इकाई 10

संस्कृत नाटक: उद्भव एवं विकास

इकाई की रुपरेखा

10.0 उद्देश्य

हम एम० ए० पूर्वार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र ललित साहित्य एवं नाटक (MASA-02) की इकाई संस्कृत नाटक का उद्भव एवं विकास का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हम निम्नलिखित तथ्यों का ज्ञान कर पायेंगें –

- काव्य किसे कहते है ? काव्य के बाह्य एवं आभ्यन्तर स्वरूप के आधार पर कितने भेद है ?
- संस्कृत काव्य में नाटक का क्या स्थान है ?
- संस्कृत नाटक की उत्पत्ति से सम्बन्धित कौन कौन से मत हैं ?
- संस्कृत नाटक किस प्रकार विकास को प्राप्त हुआ है ?
- नाटक किसे कहते है एवं इसके कितने प्रकार एवं उपप्रकार है ?

10.1 प्रस्तावना

साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाट्य श्रेष्ठ माना गया है। इसकी रचना को कवित्व की अन्तिम सीमा कहा जाता है- नाटकान्तं कवित्वम् । कारण यह है कि यह चित्रपट के समान अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। इतनी विशिष्टताएँ अन्य काव्यभेदों में नहीं होती । रूपक में गद्य-पद्य दोनों का मिश्रण तो रहता ही है, इसे सुनने के अरिक्त देखा भी जाता है। श्रव्य की अपेक्षा 'दृश्य' का अधिक सघन प्रभाव होता है। भारतीय रूपकों का उद्देश्य केवल उपदेश देना, संवादों के द्वारा किसी घटना-क्रम का निरूपण करना या विषय की स्थापना मात्र नहीं है। अपितु अभिनय के भिन्न प्रकारों से सामाजिक को रसास्वाद कराना इसका महत उद्देश्य है । प्रस्तुत इकाई में में हम संस्कृत काव्य में

नाटक का क्या स्थान है ? किस प्रकार नाटक संस्कृत में पूर्ण रूप में अस्तित्व में आया है ? संस्कृत नाटक का उद्भव कैसे हुआ ? नाटक के कितने प्रकार है ? इत्यादि का अध्ययन करने जा रहे है।

10.2 संस्कृत काव्य में नाटक का स्थान

10.2.1 काव्य का लक्षण

'काव्य का क्या स्वरूप है' इस विषय को लेकर प्रारंभिक काल से 18वीं शती तक पर्याप्त विचार किया गया। विविध आचार्यों ने पर्याप्त विचारपूर्वक काव्य लक्षणों का प्रतिपादन किया। इस काव्य-लक्षण विषयक विचार को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. शब्द व अर्थ का साहित्य काव्य - भामह, वामन, रुद्रट मम्मटादि।
2. शब्दमात्र ही काव्य - दण्डी, पण्डितराज जगन्नाथ, जयदेव।
3. शब्द व अर्थ के स्थान पर देकर रसमात्र की ही काव्यता - भोज, विश्वनाथादि।

1. शब्द व अर्थ का साहित्य काव्य

अधिकांश आचार्यों द्वारा शब्द-अर्थ दोनों में काव्यत्व स्वीकार किया गया। निम्नलिखित में सर्वाधिक प्राचीन एवं संक्षिप्त काव्यलक्षण भामह का है। इस सौह प्रमुख आचार्यों द्वारा प्रदत्त काव्य-लक्षण इस प्रकार है -

- भामह - शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। (**काव्यालङ्कार सूत्रम् 1.16)**
- वामन - काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वतते। (**काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 2,9)**
- रुद्रट - शब्दार्थौ काव्यम्। (**काव्यालङ्कार 2.9)**
- आनन्दवर्धन - सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्। (**ध्वन्यालोकः 1.1 वृत्ति**)
- मम्मट - तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। (**काव्यप्रकाश 1.8)**
- कुन्तक -शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
- बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि। (**वक्रोक्तिजीवितम् 1.1)**
- हेमचन्द्र - अदौषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्। (**वाम्भट पृ. 18)**
- विद्यानाथ - गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम्। (**प्रतापरुद्रीयम् पृ. 42)**
- विद्याधर - वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः। (**एकावली पृ. 1.13) '**

2. शब्दमात्र ही काव्य

दण्डी, जयदेव एवं पण्डितराज जगन्नाथ ने शब्द की ही काव्यनिष्ठता स्वीकार की है। आचार्य दण्डी ने 'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' काव्यलक्षण प्रस्तुत किया है। इष्ट अर्थात् मनोरम अर्थ से युक्त पदावली-शब्दसमूह काव्य का शरीर है। पण्डितराज प्रदत्त काव्यलक्षण इस प्रकार है -

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'

अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है। जिस अर्थ के ज्ञान से लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है वह रमणीय है। आचार्य जयदेव भी काव्य की शब्द निष्ठता स्वीकार करते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त काव्य लक्षण द्रष्टव्य है :-

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्॥

अर्थात् दोष रहिता, लक्षण (अक्षरसहित आदि) सहिता, पांचाली - आदि रीतियुक्ता, श्लेषादिगुणसहिता, अलङ्कार, रस एवं अनेक वृत्तियों से युक्त वाणी काव्य कही जाती है। इस प्रकार जयदेव ने भी काव्य की शब्दनिष्ठता ही स्वीकार की है।

3. शब्द व अर्थ के स्थान पर देकर रसमात्र की ही काव्यता

आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहकर रसात्मक वाक्य की ही काव्यता स्वीकार की है। यद्यपि वाक्य का लक्षण जो विश्वनाथ ने प्रस्तुत किया है उससे उनकी भी शब्द की काव्यनिष्ठता ही सिद्ध होती है।

वाक्यं स्याद्योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।

अर्थात् योग्यता, आकांक्षा एवं आसत्तियुक्त पदसमूह वाक्य कहलाता है। इस प्रकार पदसमूह वाक्य है एवं रसयुक्त वाक्य काव्य है। इस प्रकार रसवत् की ही काव्यता मानी गई है।

काव्य लक्षणों का पर्याप्त विचार करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि शब्द व अर्थ दोनों के युगल की काव्यता ही अधिकांश आचार्यों को अभीष्ट है। जिन आचार्यों ने काव्य की शब्दनिष्ठता मानी है, उन्होंने भी प्रकारान्तर से लक्षण में अर्थ का समावेश कर दिया है। यही कारण है कि मम्मट का लक्षण सर्वाधिक परिष्कृत लक्षण के रूप में विद्वानों में आदृत है।

10.2.2 काव्य के भेद एवं नाटक उन भेदों में स्थान

काव्यभेद निर्णय अलङ्कार शास्त्र का आवश्यक अंग है। अलङ्कार शास्त्र के आचार्यों द्वारा अपने अपने मतानुसार काव्यभेद प्रस्तुत किए गए हैं। काव्य भेद के मुख्य आधार दो रहे -

1. काव्य के बाह्य रूप के आधार पर
2. काव्य के आन्तरिक स्वरूप के आधार पर

1. काव्य के बाह्य रूप के आधार पर

इस आधार पर काव्य को दो भागों में विभाजित किया गया है -

दृश्य काव्य - जो अभिनेय है अर्थात् जिनका अभिनय किया जाता है। दृश्य काव्य का अपर पर्याय है रूपक। आचार्य धनंजय ने रूपक, रूप एवं नाट्य तीनों ही शब्दों का प्रयोग दृश्य काव्य के लिये किया है :

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।।

श्रव्यकाव्य –

श्रव्य काव्य केवल श्रवणयोग्य होता है। पद्य, गद्य, एवं मिश्र भेद से श्रव्य काव्य का त्रिविध विभाजन किया गया है।

पद्य -

छन्दोबद्ध पद को पद्य कहा जाता है।

इसके त्रिविध भेद है। **1.** महाकाव्य, **2.** खण्डकाव्य **3.** कोष।

गद्य

विश्वनाथ ने गद्य को चार प्रकार का माना है - मुक्तक, वृत्तगन्धि उत्कलिकाप्राय, चूर्णक। मुक्तक समासरहित होता है, वृत्तगन्धि में पद्य के अंश भी होते हैं, उत्कलिकाप्राय दीर्घसमास युक्त होता है तथा चूर्णक अल्पसमास युक्त होता है। गद्यकाव्य का कथा एवं आख्यायिका के रूप में द्विविध रूप में भी विभाजन किया गया है।

2. काव्य के आन्तरिक स्वरूप के आधार पर

ध्वनि सिद्धान्त के उदय होने के पश्चात् काव्य विभाजन में ध्वनि केन्द्र बिन्दु बना। ध्वनिवादी आचार्यों द्वारा ध्वनि (व्यङ्ग्यार्थ) की प्रधानता-अप्रधानता के आधार पर काव्य का त्रिविध विभाजन किया - ध्वनिकाव्य, गुणीभूत व्यङ्ग्य एवं चित्रकाव्य।

ध्वनिकाव्य – वह काव्य जिसमें ध्वनि का प्रयोग आधिक्य से किया गया हो।

गुणीभूत- वह काव्य जिसमें ध्वनि का प्रयोग शब्द की अपेक्षा गौण हो।

चित्रकाव्य – वह काव्य जिसमें केवल शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का ही प्रयोग किया गया हो।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि नाटक संस्कृत काव्य के दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। जो दृश्य काव्य की एकमात्र विधा है।

10.3 संस्कृत नाटक के उद्भव सम्बन्धी सिद्धान्त

10.3.1 भारतीय मत

1. दैवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त

नाटक के उद्भव अथवा उत्पत्ति के सम्बन्ध में सबसे प्राचीन मत नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में उपलब्ध होता है। त्रेतायुग में वैवष्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में सभी देवता एकत्र होकर ब्रह्मा के पास गये तथा विशेष क्रीडनीयक के निर्माण की प्रार्थना कीः-

"क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्"

ब्रह्मा जी ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके योग स्थिति में स्थित होकर चार वेदों का स्मरण किया तथा यह संकल्प किया कि मैं ऐसे पांचवें वेद की रचना करता हुँ जो धर्मानुकूल, यश एवं उद्देश्य सहित होगा। इस प्रकार नाट्यवेद का निर्माण उन्होंने चारों वेदों के अंगों से किया। पाठ्य को उन्होंने ऋग्वेद से, गीतों को सामवेद से, अभिनयों को यजुर्वेद से तथा रसों को अथर्ववेद से ग्रहण किया -

"जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसान् आथर्वणादपि।।"

यह नाट्यवेद पंचम वेद के नाम से विख्यात हुआ। इसमें शिव ने ताण्डव, पार्वती ने लास्य तथा विष्णु ने चार वृत्तियों का समावेश किया। ब्रह्मा के आदेश से देवताओं के कुशल अभियन्ता विश्वकर्मा ने रंगमंच का निर्माण किया। इन्द्रध्वज पर्व के शुभ अवसर पर प्रशिक्षित नर नारियों ने त्रिपुरदाह तथा समुद्र मंथन नामक नाटकों का प्रदर्शन किया।

समीक्षा - नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की उत्पत्ति की संक्षिप्त कथा यही है, परन्तु **20** वीं शताब्दी का पाठक इस कथा का विश्वास करेगा तो पौराणिक नहीं तो मध्यकालीन अवश्य कहलायेगा। विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हो सकते कि नाटक का उद्भव मात्र ब्रह्मा के संकल्प से अल्पकाल में हो गया। नाट्यषास्त्र में जिन विस्तृत, सूक्ष्म, जटिल एवं सर्वांगीण सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है, उनके विकास में सहस्राब्दियों की नहीं तो शताब्दियों की आवश्यकता अवश्य हुई होगी।

2. वैदिक संवाद - सूक्तवाद –

भारतीय साहित्य में प्रायः सभी बातों का मूल वेदों में खोजने की प्रवृत्ति रही है तथा यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि वेद भारतीय साहित्य की प्राचीनतम निधि है। यही कारण है कि मनीषियों ने भारतीय नाटक का उद्गम भी ऋग्वेद में खोजने की चेष्टा की है। ऋग्वेद में अनेकानेक संवादात्मक सूक्त हैं। जैसे - इन्द्र - मरुत संवाद, पुरुरवा - उर्वषी संवाद, यम-यमी संवाद, अगस्त्य - लोपामुद्रा संवाद

आदि। मैक्समूलर ने इन्हीं संवादों को नाटक का मूल उत्स माना है। इस मत का समर्थन लेवी, श्रोएडर तथा हर्टेल ने भी किया है।

समीक्षा - यह मत वस्तुतः अपने आप में अधूरा है। क्योंकि नाटक का संवाद ही एक मात्र भाग नहीं होता। प्रोफेसर कीथ उक्त मत से सहमत नहीं हैं।

10.3.2 पाश्चात्य मत

3. वीर पूजावाद

इस मत के प्रमुख समर्थक डॉ० रिजवे हैं। उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार ग्रीक देश में नाटक का जन्म दिवंगत वीरों के प्रति किये गये सम्मान के परिणाम स्वरूप हुआ, उसी प्रकार भारत वर्ष में भी नाटक की उत्पत्ति वीर पूजा से हुई। रामलीला तथा कृष्णलीला इसी प्रकार की भावनाओं के परिणाम हैं। डॉ० वचनदेव कुमार ने वीर पूजावाद के स्थान पर मृतक पूजावाद शब्दों का प्रयोग किया है।

समीक्षा:- इस मत में कोई विशेष बल नहीं है। यहॉ तक कि इस मत को बहुत से पाश्चात्य विद्वान् भी नहीं मानते हैं। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि राम और कृष्ण आदि की पूजा के पीछे मृतात्माओं के प्रति सम्मान व्यक्त करने की भावना भी अधिकांश विद्धानों के द्वारा मान्य नहीं है। क्योंकि राम व कृष्ण की पूजा इसलिए की जाती है कि भगवान् के चरित्र का स्मरण व श्रवण कर हमें सुख, शन्ति तथा मुक्ति प्राप्त हो।

4. नृत्यवाद

मैक्डोनल की मान्यता है कि नट् धातु से ही नट तथा नाटक शब्द बने हैं। नट् धातु संस्कृत की नृत् धातु का ही देशी रूप है। सामूहिक नृत्यों से ही नाटक की उत्पत्ति हुई। ऐसा उनका विचार है। बाद में हाव-भाव अंग संचालन तथा गीत आदि भी जोड दिये गये तथा इन सबकी नाटक संज्ञा हुई।

समीक्षा - नट् और नृत् अलग-अलग धातुएँ हैं जिनके रूप क्रमशः नाट्य, नृत्य बनते हैं। साथ ही नाट्यषास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्य, नृत्य तथा नृत् शब्दों की जो व्याख्या की गई है वह पूर्ण रूपेण पृथक्-पृथक् है। अतः 'नाच' को 'नाटक' का पूर्व रूप मानना उचित नहीं है। प्रो० सीताराम चतुर्वेदी की मान्यता है कि केवल नाच और संवाद से नाटक नहीं बनता। नाटक में सात्विक, वाचिक, आंगिक तथा आहार्य चारों प्रकार के अभिनयों से रससृष्टि होना आवश्यक है।

5. पुत्तलिका नृत्यवाद –

इस मत के समर्थक हैं जर्मन विद्वान् डॉ० पिशेल। उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि कठपुतली नाच संस्कृत नाटक का स्त्रोत है तथा उसका मूल स्थान भारत है। जहॉ से वह विश्व भर में फैला है। अपने मत के समर्थन में डॉ० पिशेल ने महाभारत, कथा सरित्सागर तथा बाल रामायण आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है जिसमें पुत्तलिकानृत्य के संकेत प्राप्त होते हैं। डॉ० पिशेल संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त सूत्रधार का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से स्थापित करते हैं। उनका कथन है कि पुत्तलियों को डोरे से पकडकर नचाया जाता है। क्योंकि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलियों के नृत्य से हुई। इसलिए कथा के सूत्र पकडने वालों को नाटक में सूत्रधार कहा गया-'सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः''। पिशेल के मतानुसार विदूषक के उद्गम का श्रेय कठपुतली के नाच को है।

समीक्षा - पाष्चात्य विद्वान रिजवे ने यह कहकर उक्त मत का खण्डन किया है कि सूत्रधार डोरे पकडने के कारण नहीं अपितु नाटक की कथावस्तु को संक्षेप में वर्णित करने के लिए कहा है।

6. छाया नाटकवाद

डॉ० कोनों ने छाया नाटकों से नाटकों के उद्भव को प्रस्तावित किया। इसको डॉ० पिशेल तथा डॉ० ल्यूडर्स ने समर्थित किया। छायानाटकों में पर्दे के भीतर से अभिनेताओं का अभिनय दिखाया जाता था। संस्कृत में इस प्रकार का नाटक 'दूतांगद'' था। लेकिन केवल एक मात्र यही छाया नाटक है। इसके आधार पर विशाल संस्कृत नाटकों का मूल इसे मानना विद्वत्ता के प्रतिकूल है।

समीक्षा - विचारकों ने इस मत को भ्रान्तिपूर्ण बतलाया है। डॉ कीथ का तो स्पष्टतया कथन है कि यह सिद्धान्त महाभाष्य के एक प्रसंग के अद्ध अर्थ पर आधारित है। और यह भी न भूलना चाहिए कि इस सिद्धान्त के पक्षपात को भी रूपकों की सत्ता छाया नाटक के जन्म से पूर्व स्वीकार करनी होगी। साथ ही इसमें एक सबसे बडी त्रुटि यह भी है कि इसके आधार पर रूपकों के गद्य-पद्य मिश्रण और संस्कृत प्राकृत के प्रयोग का कोई कारण नहीं बतालाया जा सकता।

8. मे-पोलवाद

कतिपय पाश्चात्य विद्धानों का विचार है कि नाटकों की उत्पत्ति 'मे पोल' नृत्य से हुई। भारतीय विद्वानों में श्री हरिप्रसाद शास्त्री भी नाट्यषास्त्र में वर्णित इन्द्रध्वज उत्सव के अवसर पर हुए प्रथम नाट्य प्रयोग से प्रेरणा प्राप्त कर पहली मई को यूरोप में होने वाले 'मे-पोल' उत्सव से साम्य बैठाते हुए नाटक की उत्पत्ति मानते हैं। 'मे-पोल' में किसी एक युवती को अलंकृत कर एक स्तम्भ गाडकर उसके चारों ओर नृत्यादि किया जाता था। श्री शास्त्री के मतानुसार निर्जीव शिशिर के अन्त में बसन्तोत्सव को मनाने के लिए किये जाने वाले प्रदर्शनों से नाट्योत्पत्ति हुई है।

समीक्षा - दोनों उत्सवों में उद्देश्य, भाव अथवा रूढि किसी का भी साम्य नहीं है। पाश्चात्य देशों का मे-पोल नृत्य बसन्तागम के आधार पर होता था तो भारतवर्ष में इन्द्रध्वज वर्षान्त के समय। अतः ''कहीं की ईट कहीं का रोड़ा'' जोड़ना उचित नहीं।

9. यवनिकावाद

इस मत के अनुसार भारतीय नाटकों का उद्भव सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् ग्रीक नाटकों के प्रभाव से हुआ। इसका एक प्रमाण यह भी है कि संस्कृत नाटकों में पर्दे का प्रयोग होता है और पर्दे को 'यवनिका' कहते हैं। यह 'यवनिका' शब्द 'यवन' से बना है। ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। इस मत के समर्थक वेबर महोदय है। उनकी मान्यता है कि भारतीयों ने यूनानियों से सम्पर्क काल में यह विद्या सीखी। डेनिस विद्वान ई-वान्द्रे भी इस मत के समर्थक हैं। उन्होंने इसका समर्थन प्राचीन भारतीय नाटकीय और मिनेण्डर कालीन यूनानी कामदियों में साम्य दिखलाते हुए किया है। प्रोलॉग और प्रस्तावना का साम्य भी इस और इंगित करता है।

समीक्षा – प्रो० सिल्वा लेवी की मान्यता है कि वेबर की इस प्रकार की मान्यता सर्वथा अनुचित है। क्योंकि यूनान में खुला रंगमंच था तथा वहॉ पर्दे का प्रयोग होता ही नहीं था। अतः जहॉ पर्दे न हों वहॉ उसका सम्बन्ध जोडना उचित नहीं। साथ ही यूनानी नाटकों एवं भारतीय नाटकों में अनेक असमानताएँ होने के कारण भारतीय नाटक का यूनानी नाटक से उद्भव मानना उचित प्रतीत नहीं होता।

10. लोक-स्वांगवाद

प्रो० हिलब्रैण्ट तथा स्टेनकोनों का कथन है कि भारतवर्ष में पहले स्वांग अधिक जनप्रिय थे। इन्हीं स्वांगों में रामायण - महाभारत की कथाओं का संयोजन कर नाटकों का विकास किया गया।

समीक्षा - यह मत भी विद्वानों को मान्य नहीं हो सका। डॉ० कीथ ने इस मत का प्रबल विरोध किया।

11. प्रकृतिवाद

डॉ०कीथ की मान्यता है कि प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्त रूप में परिवर्तन करने से नाटकों की उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने कथन का आधार महाभाष्य में उल्लिखित 'कंस वध' नामक नाटक को बनाया है। जिसमें पात्र रक्तमुख एवं कृष्णमुख होकर अभिनय करते हैं। डॉ कीथ के अनुसार इस नाटक का उद्देष्य हेमन्त ऋतु पर बसन्त ऋतु की विजय दिखलाना है। कृष्ण की विजय प्रकृति के भीतर विलास करने वाली जीवनी शक्ति का प्रतीक है।

समीक्षा - परन्तु इस मत की भी वही गति हुई जो अन्य मतों की हुई थी अर्थात् यह भी विद्वानों को स्वीकृत नहीं हुआ।

विश्लेषण - उक्त सभी मतों का अनुशीलन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में किसी भी एक वाद विशेष या मत को ही प्रमुखता प्रदान करना उचित न होगा, क्योंकि उनके विकास में तो शनैः शनैः सभी तत्व सहायक रहे हैं। डॉ वचनदेव कुमार की मान्यता है कि ''प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में नृत्यागीतों का प्रचलन रहा है। उनमें कथा-संवाद तथा अभिनय के सामंजस्य से क्रमषः नाटक विकसित हुए। भारत के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में नाटक एवं उसके अभिनय के उल्लेख से यह धारणा पुष्ट होती है कि नाटकों की उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में ही हुई। इसमें नृत्य, गीत-पुरा-कथा एवं संवादों का सहयोग है।''प्रो०हसंराज अग्रवाल के शब्दों में ''यह रूपक का विकास मानों एक सजीव शरीर था जिसके रूप में बार-बार परिवर्तन हुए जिसको जो मिला उसी को हडप लिया तथा फिर भी अपना स्वरूप अक्षुण्ण कर रखा।''

10.4 संस्कृत नाटक का विकास

संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास क्रमशः वैदिककाल से ही प्रारंभ हो गया थां इस संदर्भ में प्रो इन्द्रपाल सिंह ''इन्द्र'' का कथन उल्लेखनीय है - वेदों में ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं जिनसे वैदिककाल में नाट्कों की स्थिति सिद्ध होती है। ऋग्वेद के सूक्तों में सोमविक्रय के समय होने वाले अभिनय का पता चलता है। महाव्रत स्त्रोत के अवसर पर कुमारियाँ नृत्य गान के साथ अग्नि की परिक्रमा करती थी। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय की छठी कण्डिका में ''षैलूश'' शब्द आया है, जिसका अर्थ है-अभिनेता। कहा जाता है कि एक सूत को नृत्य के लिए ओर शैलूष को गाने के लिये नियुक्त किया जाना चाहिये। सामवेद के स्त्रोत रागबद्ध हैं ही जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में संगीत पूर्ण विकासावस्था में था। संगीत के अलावा नृत्य तथा वाद्य के भी संकेत प्राप्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में वे सभी उपादान प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे जो नाटक के विकास के लिए अपेक्षित हैं।

वेदों के पश्चात् रामायण एवं महाभारत में भी नाटक के संकेत प्राप्त होते हैं। महाभारत में ''रामायण नाटक'' तथा ''कौबेर रंगाभिसार'' नामक नाटकों के नाम आये हैं। महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला तथा नट का प्रयोग है। रामायण में भी ''नट'', ''नाटक'' ''रंग'' तथा नर्तक का अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनि ने भी ''अष्टाध्यायी'' में पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ' द्वारा नाटकों की पूर्व रचना का आभास दिया है।

चतुर्थ शती ई०पूर्व के कौटिल्यीय ''अर्थशास्त्र'' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नट, नर्तक, गायक, वादक, प्लवक, कुषीलव, सौमित्र तथा चारण आदि नाटकादि करके अपना जीवकोपार्जन करते थे। बौद्ध ग्रन्थों में ''विनय पिटक'' के ''चुल्लवग्ग'' में एक कथा है कि अष्वजित तथा पुनर्वसु अभिनय देखने के पष्चात् नर्तकी के साथ प्रेमालाप कर रहे थे तो उन्हें महास्थविर ने विहार से तत्काल निश्कासित कर दिया था। अतएव इस समय में भी नाट्यकला भारतव्यापी हो गई थी।

पतञ्जलि ने ''महाभाष्य'' में ''कंसवध'' तथा ''बलिवध'' दो नाटकों का नामोल्लेख किया है। महाभाष्य में ''रसिको नटः'' पद सिद्ध करता है कि पतंजलि के समय रस सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान था। उक्त विवरण से सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति भारत में हुई तथा वह वैदिक काल से ही क्रमशः विकसित होता हुआ अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त हुआ। वर्तमान में उपलब्ध जो रूपक हैं, उनमें नाटककार भास विरचित रूपक सबसे प्राचीन हैं-ऐसी अधिकांश विद्वानों की मान्यता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि भास संस्कृत नाट्य साहित्य के आद्य नाटककार हैं।

10.5 नाटक : परिभाषा एवं प्रकार

साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाट्य श्रेष्ठ माना गया है। इसकी रचना को कवित्व की अन्तिम सीमा कहा जाता है- नाटकान्तं कवित्वम्। वामन ने काव्यालंकारसूत्र में **(1/3/30)** कहा है- सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेय:।काव्य को संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने दृश्य और श्रव्य के रूप में दो वर्गो में रखा है। दृश्यकाव्य के दो भेद हैं- रूपक तथा उपरूपक। रूपक दस और उपरूपक अठारह प्रकार के होते हैं। रूपकों का एक प्रमुख भेद 'नाटक' है जो अपने अर्थ का विस्तार करके सामान्यत: बहुत व्यापक अर्थ में प्रचलित है, यद्यपि संस्कृत में यह एक सीमित अर्थ- परिधि में आता है। इस प्रसंग में धनञ्जय ने नाट्य, रूप और रूपक - इन तीन शब्दों का प्रयोग किया है । नाट्य में चार प्रकार के अभिनयों द्वारा काव्य में उपनिबद्ध पात्रों की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है - अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् - (दशरूपक प्रथम प्रकाश)। चक्षुग्राह्य होने से इसे रूप भी कहते हैं - रूपं दृश्य-तयोच्यते' । इसी प्रकार नाटक के पात्रों रामादि का नट पर आरोप होने से इसे रूपक भी कहा जाता है - 'रूपकं तत्समारोपात्।' 'नट् अवस्पन्दने' धातु से नाट्य शब्द निष्पन्न हुआ है। इसमें वाक्यार्थरूप वाचिक अभिनय तथा सात्विक अभिनय की प्रधानता होती है अतः मुख्यतः यह रसाश्रय होता है।
द्शरूपकम् के प्रणेता धनञ्जय ने रूपक के दस एवं उपरूपक के अठारह भेद किये गये हैं-

नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम:।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।। **(दशरूपक** 1/8**)**

रूपक के दस भेद

1.नाटक 2.प्रकरण 3.भाण 4. व्यायोग 5. समवकार 6. डिम 7. ईहामृग 8. अंक 9.वीथी 10. प्रहसन

उप रूपक के 18 भेद

1	नाटिका	**8**	काव्य	**15**	दुर्मल्ली
2	त्रोटक	**9**	प्रेङ्खण	**16**	प्रकरणिका
3	गोष्ठी	**10**	रासक	**17**	हल्लीश
4	सट्टक	**11**	संलापक	**18**	भाणिका
5	नाट्य रासक	**12**	श्रीगदित		
6	प्रस्थान	**13**	शिल्पक		
7	उल्लाप्य	**14**	विलासिका		

10.6 पारिभाषिक शब्दावली

नाटक - चार प्रकार के अभिनयों द्वारा काव्य में उपनिबद्ध पात्रों की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है – अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् ।

रूपक- इसी प्रकार नाटक के पात्रों रामादि का नट पर आरोप होने से नाटक को रूपक भी कहा जाता है - 'रूपकं तत्समारोपात्।'

वाक्य – आकांक्षा योग्यता सन्निधि से युक्त पदों के समूह को वाक्य कहते है।

शैलूश - शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय की छठी कण्डिका में ''षैलूश'' शब्द आया है, जिसका अर्थ है-अभिनेता। कहा जाता है कि एक सूत को नृत्य के लिए ओर शैलूष को गाने के लिये नियुक्त किया जाना चाहिये।

यवनिका - संस्कृत नाटकों में पर्दे का प्रयोग होता है और पर्दे को 'यवनिका' कहते हैं।

सूत्रधार - कथा के सूत्र पकडने वालों को नाटक में सूत्रधार कहा गया-'सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः''।

मे-पोल -में किसी एक युवती को अलंकृत कर एक स्तम्भ गाडकर उसके चारों ओर नृत्यादि किया जाता था।

10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. काव्य किसे कहते है ? इसके विविध भेदों के नाम लिखिए ?
2. संस्कृत नाटक के विकास को उल्लेखित किजिए ?
3. मे पोल वाद क्या है ? समझाइये ?
4. नाटक के दस भेदों के नाम लिखिए ? किसी एक भेद को समझाइये ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. काव्य के विविध लक्षणों को प्रदर्शित करते हुए विभिन्न आचार्यो द्वारा दिये लक्षणों की परीक्षा किजिए ?
2. नाटक किसे कहते है ? रूपक तथा उपरूपकों के विविध प्रकारों का वर्णन किजिए ?
3. नाटक की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों का वर्णन किजिए ?
4. संस्कृत नाटकों की वर्तमान प्रासंगिकता पर लेख लिखिए ?

10.8 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने सर्वप्रथम संस्कृत काव्य में नाटक के स्थान का ज्ञान प्राप्त किया। इसके पश्चात् काव्य के लक्षण के तीन सम्प्रदाय का अध्ययन किया। इसी के साथ काव्य के विविध भेदों का अवबोध किया। नाटक की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों तथा संस्कृत नाटकों के क्रमिक विकास का अध्ययन किया। अन्त में नाटक की परिभाषा तथा नाटक के प्रकार एवं उप प्रकार का अध्ययन किया।

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2014
2. नन्दी, सागर, नाटकरत्नलक्षणकोशः,चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा एवं दशरूपक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2007.
4. व्यास, भोलाशंकर, दशरूपकम्, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2004.
5. Chakyar, M. M. ,NATYAKALPADHRUM, Sangeet Natak Akademi, New Delhi, 1996.
6. Varma, K. M.. NATYA NRTTA AND NRTYA - THEIR MEANING AND RELATION. Bombay: Oriental Organization, 1995.

इकाई 11

नाट्यग्रन्थों के आधार पर रूपकों के प्रकार,संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाटककार

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

एम. ए. संस्कृत पूवार्द्ध के प्रश्न–पत्र द्वितीय ललित साहित्य एवं नाटक के पाठ्यक्रम में इकाई दस के अन्तर्गत रूपकों के प्रकार, संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाटककारों का आपको अध्ययन करना है। इसके अध्ययन के उपरान्त आप–

- रूपक शब्द का तात्पर्य सम्यक् रूप से समझ सकेगें।
- विभिन्न नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित रूपकों के प्रकारों से परिचित हो जाऐंगें।
- संस्कृत रूपकों की विशेषताओं का ज्ञान आपको हो जाएगा।
- संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाट्यकारों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं संस्कृत वाङ्मय में उनके योगदान को आप जान सकेगें।

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में से नाट्यविधा से परिचय प्राप्त कर रहे है।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।। सा.द. 6/1

वाङ्मय के दो भद है (1) दृश्य काव्य (2) श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य पठन, पाठन, श्रवण द्वारा सहृदयों क हृदय को आकृष्ट करता है। जबकि दृश्य काव्य नेत्रों के माध्यम से दर्शको के हृदय का स्पर्श करता है।

संस्कृत में दृश्यकाव्य के लिए 'रूपक' शब्द प्रयुक्त होता है। यहाँ अभिनय की अवस्था में नट तथा नटी पर नाटक के पात्रों का आरोप होने से यह रूपक है।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र वह आकर ग्रन्थ है जिसमें नाटको के समस्त तत्त्वों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इन्होंने नाटक को 'लोकवृत्तानुकरणं नाट्यं' एवं 'लोकोपदेशजननं' तथा ''विश्रान्तिजननं'' कहा है।

महाकवि कालिदास ने नाटक को चाक्षुषक्रतुं कहकर इसकी महत्ता को इस प्रकार सिद्ध किया है।

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्

इसके अतिरिक्त काव्येषु नाटकं रम्यं एवं नाटकान्तं कवित्वं इत्यादि उक्तियाँ काव्य में नाटक की श्रेष्ठता को स्वतः उजागर करती है।

प्रस्तुत इकाई में रूपकों की परिभाषा, रूपको के प्रकार, संस्कृत रूपको की विशेषताएँ एवं संस्कृत के प्रमुख नाट्ककार यथा भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, हर्ष, भवभ्ति, भट्टनारायण, इत्यादि के विषय में आप जानकारी प्राप्त करेंगे।

11.2 रूपक की परिभाषा

रूप शब्द मूलतः नेत्रों के विषय का द्योतन करता है, इसीलिए दृश्यकाव्य के लिए प्रयुक्त जातिवाचक नाम रूप या रूपक है। दशरूपककार के अनुसार ''रूपं दृश्यतयोच्यते'' – ''तदेवं नाट्यं दृश्यमानतया रूपमित्युच्यते नीलादिरूपवत्'' जैसे नीले पीले इत्यादि रंगों को हम अपनी आँखों से देखते है उसी प्रकार नाट्य को भो रंगमंच पर देखते है इसलिए वह रूप है।

नाट्यदर्पणकार रूप का निर्वचन करते हुए कहते है– ''रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि'' रूपित अर्थात् अभिनीत होने के कारण नाटकादि को रूप माने है।

नाट्य दर्पणकार का यह मत मान्य नहीं है क्योंकि नाट्य केवल दृश्य ही नहीं है भरतमुनि नाटक को ''दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्'' कहकर इसे दृश्य एवं श्रव्य दोनों कहा है।

नाटक के पर्यायवाची के रूप में रूपक शब्द अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। रूपक अलंकार में उपमेयभ्त मुख पर उपमानभ्त चन्द्र का आरोप किया जाता है ;तद्रूपकमभदो य उपमानोपमेययोः–उपमानोपमेंययोः यः अभदः अभदारोपः तत् रूपकमित्यर्थःद्ध उसी प्रकार नाट्य में नट पर राम आदि अनुकार्य पात्रों की अवस्था का आरोप किया जाता है। रूपकं तत्समारोपात् –नटे रामाद्यावस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुख चन्द्रादिवत् इसी अभदारोप के कारण ही अनुकार्य तथा नट में तादात्म्य प्रतिपत्ति होती है। इसी कारण नाट्य को रूपक नाम से अभिहित किया जाता है। नाट्य के लिए रूपक शब्द का प्रयोग प्रायः सभो नाट्य शास्त्रियों द्वारा किया गया है। यथा –

दृश्यं तत्राभिनेयं

तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।	साहित्यदर्पण 6/1
त्रिंशद्रूपकभदाश्च प्रकाश्यन्तेऽत्र लक्षणैः।	भाव प्रकाशन 8 अधिकार।
तत्र रूपकेषूत्कृष्टत्वाद् बहुगुणाकीर्णत्वाच्च।	नाटक लक्षण रत्नकोश।
सन्दभषु दशरूपकं श्रेयं।	वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति। 1/3–30

11.3 रूपकों के प्रकार

आचार्य भरत ने रूपक प्रकार के सम्बन्ध में कहा है–

सर्वेषामेव काव्यानां मातृका वृत्तयः स्मृताः।
आभ्यो विनिःसृतं चेतद्दशरूपं प्रयोगतः।। ना. शा. 18/4

भरत के अनुसार चारों वृत्तियाँ समस्त काव्यों की मातृ का है एवं यह दशरूप प्रयोग इन्हीं से निकले है ये अभिनेय काव्य बन्ध के दस भद इस प्रकार है

नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः।।
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे।।   ना. शा. 18/2.3

नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम, ईहामृग भरतमतानुसार रूपक के ये दस भद हैं। इनमें से नाटक तथा प्रकरण सर्ववृत्तिनिष्पन्न है जबकि अन्य वृत्तिन्यून है। वीथ्यादि आठ अंगों में कैशिकी वृत्ति नहीं होती है। (ना. शा. 18/7–8)

इन दशरूपों के अतिरिक्त भरतमुनि ने 'नाटिका' का भो उल्लेख किया है जो कि प्रकरण तथा नाटको से उत्पन्न है।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने रूपक के 12 भद बताए हैं। वे है–

नाटकं सप्रकरणं च नाटिका प्रकरण्यथ।

व्यायोगः समवकारः भाणः प्रहसनं डिम।।

अङ्क ईहामृगो वीथी चत्वारः सर्ववृत्तयः।   नाट्यदर्पण 1/3–4

त्रिवृत्तयः परे त्वष्टौ कैशिकी–परिवर्जनात्।।

नाटक, प्रकरण, नाटिका, प्रकरणी, व्यायोग, समवकार भाण, प्रहसन, डिम, अंक, ईहामृग एवं वीथी (नाट्यदर्पण 1/2–4) भरत के बताए।। भदों में प्रकरणी का जोड़कर 12 भद किए है। परन्तु नाट्य दर्पण में प्रकरणी का कोई उद्धरण नहीं दिया है।

दशरूपककार धनञ्जय ने स्पकों के भदक तत्त्वों का उल्लेख करते हुए कहा है– वस्तु नेता रसस्तेषां भदकः।

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।।   द.रू. 1/8

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृग इति।।   द. रू. 1/8–9

प्रतापरूद्रीयकार विद्यानाथ ने भो इसी भद को माना है वस्तुनेतृरसस्तेषां रूपकाणां हि भद काः (प्रतापरूद्रीय नाटक प्रकरण 3)

धनंजय ने भरत के समान नाटिका का भो उल्लेख किया है लक्ष्यते नाटिकाऽप्यत्र संकीर्णाऽन्यनिवृत्तये। रूपकों के संकीर्ण भदों में नाटिका का परिगणन किया गया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रूपकों के दशभद के साथ ही 18 उपरूपकों का भो उल्लेख किया है–

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सदृकं नाट्यरासकम्

प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा

संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका

दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च। सा.द. 6/4–5

इसमें नाटिका, प्रकरणी एवं भाण से समान 6 नृत्यभदों को भो रूपकों की मान्यता दे दी है।

शारदातनय ने भावप्रकाशन के आठवें अध्याय में रूपकों की संख्या तीस मानी है। इनमें से दस रसाश्रययूत नाटक प्रकरण आदि है शेष 20 तोटक, नाटिका, प्रेक्षक सट्टक आदि भावात्मक है।

श्रृंगारप्रकाशकार भोजराज ने अध्याय 20 में दृश्यकाव्य के बीस भद गिनाये है।

काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने अष्टम अध्याय में काव्य के दो भद किए है– 'प्रेक्ष्यं श्रव्यं च' प्रेक्ष्य एवं श्रव्य प्रेक्ष्य के दो भद है – पाठ्यं गेयं च। पाठ्य के अन्तर्गत रूपकों के भद है– पाठ्यं नाटकप्रकरणनाटिका समवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्क प्रहसन भाण वीथीसदृक़ादि इसमें इन्होंने 'सट्टक' एवं नाटिका को भो जोड़ते हुए 12 भद माने है।

सारांशतः रूपकों के प्रकार दो प्रकार से है–

(1) वृत्ति चतुष्टय (2) वस्तु–नेता–रस। परवर्ती आचार्यों ने रस को ही रूपकों का भदक आधार स्वीकार किया है। रूपको के भद इस प्रकार है नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, उत्सृष्टिकांक ;अंकद्ध तथा ईहामृग। इनके अतिरिक्त नाटिका, प्रकरणी, त्रोटक तथा सट्टक को भो विभिन्न आचार्यों ने रूपक भदों में गिना है।

इनके अतिरिक्त विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में 'महानाटक' नामक नई विधा का भो लक्षण दिया है।

एतदेव यदा सर्वैः पताकास्थानकैर्युतम्।

अंकैश्च दशभिर्धीराः महानाटकमूचिरे।।

यथा बालरामायणम् **सा. द. 6/223–24**

वर्तमान में इन रूपक–प्रकारो में से नाटिका, प्रहसन, सदृक, भाण, नाटक रूप ही सर्वाधिक प्राप्त होते हैं। रूपकों के इन प्रकारों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से दिया जा सकता है।

1. नाटक

नाटक की कथावस्तु प्रख्यात (ऐतिहासिक या पौराणिक) होनी चाहिए। नायक धीरोदात्त होना चाहिए। नाटक में संध्यङ्गो सहित पाँचों संधियों का विधान होता है। तथा अंकों की संख्या पाँच से 10 तक होती है। चारो वृत्तियाँ (कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती एवं भारती) होती है। मुख्य रस वीर या शृंगार तथा अन्य सभो रस अङ्गी होते हैं। यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम्, मुदाराक्षस, वेणीसंहार इत्यादि।

प्रकरण –

प्रकरण की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, मंत्री या वैश्य में से कोई भो हो सकता है। नायिका कुल स्त्री या गणिका कोई भो हो सकती है। 5 से 10 तक अंक हो सकते है। नायक धीर प्रशान्त होता है। पाँचों संधियाँ एवं वत्ति कैशिकी होती है। शृंगार रस प्रमुख होते है। यथा मृच्छकटिकम्, मन्दारमरन्दचम्पू प्रकरण इत्यादि।

भाण –

वस्तु कल्पित होती है। विट, धूर्त, वेश्या आदि का चरित्र वर्णित होता है। मुख तथा निर्वहण

संधि होती है। एक अंक होता है। अधिकतर भारती या कैशिकी वृत्ति, मुख्यतः शृंगार एवं वीर रस। भाण का पात्र 'ब्रवीषि' यह कहकर उत्तर प्रत्युत्तर करता जाता है। लास्य के दस अंगों का प्रयोग होता है। सामाजिक रीति रिवाज, कुरीतियों तथा दोषों का पर्दाफाश करने के लिए साहित्यिक अस्त्र है। मदन – संजीवन भाण इत्यादि।

प्रहसन –

प्रहसन की कथा वस्तु कविकल्पित एवं अधम प्रकृति के नायक से सम्बद्ध होती है। एक ही अंक होता है। मुख तथा निर्वहण संधि एवं लास्य के दस अंगों से युक्त होता है। अंगी रस हास्य रस होता है।

डिम –

इसकी कथावस्तु इतिहास–प्रसिद्ध होती है। इसमें कैशिकी के अतिरिक्त शेष सभो वृत्तियाँ होती है। इसके नेता उद्धत स्वभाव वाले देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भत्प्रेत पिशाच आदि होते हैं । इसमें शान्त, हास्य एवं शृंगार के अतिरिक्त शेष छः रस होते हैं । प्रधान रस रौद्र होता है। मुख, प्रतिमुख, गभ एवं निर्वहण चार संधियाँ होती हैं। चार दिनों से सम्बन्धित चार अंक होते है यथा त्रिपुरदाह–

व्यायोग –

व्यायोग की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। नायक इतिहास प्रसिद्ध तथा धीरोद्धत होता है। व्यायोग में नायिका नहीं होती। एक दिन के वृत्तान्त वाला यहाँ एक ही अंक होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति के अतिरिक्त अन्य वृत्तियाँ तथा मुख प्रतिमुख व निर्वहण संधि होती ह। हास्य, शृंगार तथा शान्त रस के अतिरिक्त अन्य छः रस होते हैं। यथा जामदग्न्यजय तथा सौगन्धिकाहरण।

समवकार –

समवकार में बारह प्रधान पात्र अथवा नायक होते हैं। (ये देव तथा असुर से सम्बद्ध हो सकते है।) प्रख्यात विषय वस्तु होती है। इसमें वीर रस की प्रधानता होती है और अन्य रस इसको पुष्ट करते है। इसमें विमर्श को छोड़कर अन्य संधियाँ तथा कैशिकी के अतिरिक्त अन्य वृत्तियाँ होती है। इसमें तीन प्रकार के कपट (स्वभाविक, दैविक तथा कृत्रिम) तीन प्रकार के विद्रव (चेतनकृत, अचेतनकृत, उभयकृत) तथा तीन प्रकार के शृंगार (धर्म, अर्थ तथा काम शृगार) होते है। यथा समुद्रमन्थन।

वीथी –

वीथी कल्पित कथा युक्त एकांकी है। अन्य रसों का किंचित् स्पर्श रहते हुए भो शृंगार रस की ही प्रधानता होती है। मुख तथा निर्वहण संधि होती है। इसमें एक या दो पात्र होते हैं जो आकाश भाषित के माध्यम से उत्तर प्रत्युत्तर करते है। यथा बकुल–वीथी, मालविका तथा इन्द्रलेखा इत्यादि।

उत्सृष्टिकांक अथवा अंक –

अंक नायक रूपक–भद की कथावस्तु प्रख्यात अथवा कल्पित कोई भो हो सकती है। इसमें स्त्रियों के विलास आदि का वर्णन रहता है। इसमें करुण रस की प्रधानता होती है किन्तु दुखान्त कभो नहीं होता। इसका नायक प्राकृत पुरुष होता है। जय पराजय आदि का इसमें वर्णन होता है। युद्ध केवल वाणी द्वारा (वाग्यु) होता है। भारती वृत्ति होती है। एकांकी होता है तथा मुख एवं निर्वहण संधि होती है। यथा – शर्मिष्ठा–ययाति।

ईहामृग –

ईहामृग की कथावस्तु मिश्रित होती है। चार अंक होते ह। वस्तु कल्पित होती है। नायक एवं प्रतिनायक इतिहास प्रसिद्ध देवता तथा मनुष्य होते हैं। धीरोद्धत प्रकृति के होते है। सम्पूर्ण कथावस्तु की गतिशीलता दिव्यनायिका की प्राप्ति के लिए होती है। गभ एवं विमर्श से रहित तीन संधियाँ।

नाटिका –

नाटक तथा प्रकरण का मिश्रण रहता है। वस्तु कविकल्पित होती है। नायक धीरललित प्रकृति का होता है। प्रधान रस शृंगार होता है। चार अंक होते है। स्त्रीपात्रों की बहुलता होती है। यथा रत्नावली, प्रियदर्शिका, कमसुन्दरी, विद्वत्शालभजिका।

11.4 संस्कृत रूपकों की विशेषताएँ

(1) संस्कृत नाटक प्रायः सुखान्त ही होते हैं। इनका अन्त सदा ही शोभन घटनाओं से, मैत्री से तथा विरोध के उपशमन से होता है।

(2) परिमाण की दृष्टि से संस्कृत नाटक विस्तृत होते हैं। संस्कृत नाटकों में प्रायः पाँच से दस अंक तक होते हैं।

(3) संस्कृत नाटकों में संस्कृत के साथ प्राकृत भाषाओं का मिश्रण पाया जाता है। नायक एवं उच्च वर्गीय पात्र संस्कृत का प्रयोग करते है। जबकि स्त्रियाँ एवं निम्न वर्गीय पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है।

(4) नाटकों की कथावस्तु काल्पनिक न होकर रामायण, महाभारत, पुराण एवं बृहत्कथा इत्यादि के कथानकों पर आधारित होती है।

(5) नाटक में गद्य–पद्य का सम्मिश्रण संस्कृत नाटकों की अनूठी विशेषता है। यहाँ कथोपकथन गद्य में एवं प्रकृतिवर्णन, नीति, सुभाषित इत्यादि के लिए पद्य का प्रयोग किया जाता है।

(6) संस्कृत नाटक 'अंकों' में विभक्त किए गए है। प्रत्येक अंक के अन्त में सभो पात्रों का रंगमंच से चला जाना आवश्यक होता है। अगले अंक के कथानक को जोड़ने के लिए प्रवेशक अथवा विष्कंभक का प्रयोग किया जाता है।

(7) संस्कृत नाटको में विदूषक का पात्र भो विशेष होता है। यह नाटक में केवल हास्य के उत्पादन के लिए ही नहीं होता है अपितु यह नायक का मित्र होता है एवं समय–समय पर नायक को उचित परामर्श देकर उसकी सहायता भो करता है।

(8) संस्कृत नाटकों की अभिनेयता को सुगम बनाने की दृष्टि से यहाँ अभिनय सम्बन्धी संकेत भो यथास्थान दिए जाते है यथा जनान्तिकम्, अपवारितम्, सरोषम्, विहस्य, आकाशे इत्यादि।

(9) संस्कृत नाटक प्रायः आदर्शवादी होते है। इनका लक्ष्य है लोकरजन के साथ–साथ समाज में नैतिकता एवं उच्च आदर्शो की स्थापना करना।

(10) संस्कृत नाटक प्रायः प्रेक्षागृह अथवा नाट्यमण्डपों में ही किन्हीं विशेष अवसरों पर यथा पर्व, उत्सव, राज्यभिषेक, विवाह पर प्रदर्शित किए जाते थे।

(11) संस्कृत नाटको में प्रायः वर्णन बाहुल्य के कारण कथा प्रवाह में तीव्रता नहीं है यहाँ गति पर बल नहीं दिया गया है।

(12) संस्कृत नाटकों में अन्वितित्रय का अभाव पाया जाता है। स्थानान्विति, (सभो घटनाएँ एक ही स्थान पर हो) कालान्विति (समग्र घटनाएँ एक ही दिन में हो) कार्यान्विति (समस्त घटनाओं का एक ही उद्देश्य हो) में से केवल कार्यान्विति ही संस्कृत नाटकों में पायी जाती है।

(13) डॉ. डे के अनुसार संस्कृत नाटकों की प्रकृति भावुक अधिक है। यहाँ के नाटककार प्रथमतः कवि है बाद में नाटककार।

(14) संस्कृत नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी रसमयता तथा रसजनकता। सहृदय के हृदय का आह्लाद अर्थात् सहृदय के हृदय में रसानुभ्ति जगाना ही नाटक का चरम लक्ष्य है।

(15) संस्कृत रूपकों का एक विशेष पात्र है कंचुकी जो अन्तःपुर का द्वारपाल होता है। अन्तःपुर में प्रवेश के लिए इसकी अनुमति आवश्यक होती है। यह वृद्ध ब्राह्मण या क्लीव होता है।

(16) नाटकीय अभिनय की दृष्टि से संस्कृत क अधिकांश नाटक रंगमंच पर सफल तथा अभिनीत नहीं किये जा सकते। इस दृष्टि से कई नाटकों को पाठ्य नाटकों की श्रेणी में रखना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत रूपको में धार्मिक भावनाओं की प्रतिष्ठा अलौकिकता, आकाशभाषित, भाग्यवाद, आश्रम के साथ–साथ राज–प्रासाद गृह कानन प्रकृति चित्रण भो उस समय के भावात्मक तथा ऐश्वर्यात्मक वातावरण का भान कराते है।

11.5 संस्कृत के प्रमुख–नाटककार

भास

महाकवि भास संस्कृत–रूपककारों में सम्भवतः प्राचीनतम है। सन् 1912 से पूर्व कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, राजशेखर, जयदेव इत्यादि संस्कृत कवियों ने भास की प्रशंसा तो बहुत की थी किन्तु भास के नाम से कोई ग्रन्थ उपलब्ध न था। 1912 में ही गणपतिशास्त्री ने

भास के 13 नाटकों की श्रृंखला जारी की। इन नाटको के अन्तः साक्ष्य तथा बहिर साक्ष्यों के आधार पर भास का समय ई. पू. चतुर्थ तथा पंचम शताब्दी माना जा सकता है।

भास की उपलब्ध रचनाओं को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. उदयनकथा मूलक – प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्
2. रामायण मूलक – प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक
3. महाभारतमूलक – ऊरुभङ्ग, दूतवाक्य, पञ्चरात्र, दूतघटोत्कच, कणभार, मध्यमव्यायोग तथा बालचरितम्
4. लोककथामूलक – अविमारक तथा चारूदत्त

भास के रूपकों की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी अभिनेयता भास का कवित्व सदा नाटकीयता का सहायक बना है। भास के कवित्वपूर्ण पद्य नाटकीय घटनाचक्र को गति प्रदान करने वाले हैं।

मध्यम व्यायोग, दूतघटोत्कच, ऊरूभग, दूतवाक्य, कणभार में एक अंक वाले होने से एकांकी को गए है।

भास के संवादो की भाषा सरल, दीर्घ समास रहित, अल्प अलंकारो से समन्वित, प्रवाहपूर्ण है।

भास ने अपने रूपको की प्रकृति के अनुसार ही नायकों को चित्रित किया है। पात्रों के चित्रांकन में कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। पात्रो के साथ दर्शकों का तादात्म्य सहज ही हो जाता है।

भास के रूपको में मुख्यतः श्रृंगार, वीर व करूण रस अङ्गीरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में श्रृंगार, ऊरूभङ्ग तथा मध्यम व्यायोग में वीररस, प्रतिमा तथा कणभारम् में करूण रस अङ्गीरूप में उपलब्ध है।

नाटकीय दृष्टि से समस्त रूपकों का व्यवस्थित तथा सुसंगठित होना, सरल, सरस भावों की अभिव्यक्ति तथा रङ्गमञ्च की उपयुक्तता की दृष्टि से मास के रूपक संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है।

शूद्रक

संस्कृत के नाट्य साहित्य में मृच्छकटिक ही एक अकेला ऐसा नाटक है, जिसमें एक साथ प्रणय–कथात्मक प्रकरण, धूर्तसंकुल भाण, तथा राजनीतिक नाटक का वातावरण दिखाई देता है। तत्कालीन मध्यम वर्ग के समाज की सामाजिक स्थिति को यहाँ पूर्णतः प्रतिबिम्बित किया गया है। (भोला शंकर व्यास)

मृच्छकटिक एक दस अंकों का प्रकरण है। इसमें चारुदत्त एवं गणिका वसन्त सेना के प्रणय का सरस चित्रण किया गया है। इसमें दो कथा साथ–साथ चलती है प्रथम भाग में चारुदत्त एवं वसन्त सेना का प्रणय चित्रण है दूसरे भाग में आर्यक की राजप्राप्ति के प्रयास का चित्रण है।

'मृच्छकटिक' के रचयिता कवि शूद्रक के जन्म स्थान, काल इत्यादि के विषय में विद्वानो में मतभद रहा है। कुछ इन्हें कालिदास का पूववर्ती एवं भास के पश्चात्वर्ती मानते हुए ई. पू. प्रथम शताब्दी मानते हैं एवं कुछ विद्वान नाटक में वर्जित सामाजिक राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति के आधार पर इनका समय ईसा की पाँचवीं शताब्दी या छठी शताब्दी के पूर्वाद्ध की रचना कहते हैं।

इस नाटक की सर्वप्रमुख विशेषता है इसम प्रचलित संस्कृत नायक सरणि राजा देवता के स्थान पर एक सामान्य ब्राह्मण को नायक बनाया गया है। यही संस्कृत का एक मात्र यथार्थवादी नाटक है। यहाँ चोर, जुआरी, बदमाश, राजनीति षड़यन्त्री, भिक्षु, विट, चेट, राजसेवक, पुलिस कमचारी, बेकार जन, गणिकाओं के विस्तृत समाज का यर्थाथ चित्रण किया है।

नाटक का नामकरण प्रकरण की एक घटना पर आधारित है। चारुदत्त का पुत्र मिट्टी की गाड़ी से खेलने से इन्कार कर देता है। वह पड़ौसी के बच्चे के समान सोने की गाड़ी से खेलना चाहता है। रोते–रोते रदनिका के साथ वसन्त सेना के पास जाता है। वह अपने स्वर्णिम आभ्षण दे देती है। बाद में वह आभ्षण विदूषक के पास से पकड़े जाते है और चारुदत्त के द्वारा सुवर्ण के लिए वसन्त सेना की हत्या किए जाना सिद्ध हो जाता है।

नाटकीय संविधान की दृष्टि से घटनाक्रम में सर्वत्र गत्यात्मकता बनी हुई है। सामाजिको में कौतुहल वृत्ति सर्वत्र बनी रहतो है।

शूद्रक की रचना शैली अत्यन्त सरल है। बड़े–बड़े छन्दों का अत्यल्प प्रयोग किया है। मुख्य रस श्रृंगार है करूण, भयानक, अद्भत, बीभत्स और हास्य रस अंगीरूप में है।

कथोपकथन एवं अभिनेयता की दृष्टि से यह सफल नाटक है।

मृच्छकटिक के टीकाकार पृथ्वीघर के अनुसार इस नाटक में शौरसेनी, प्राच्या, मागधी, शकारी, चाण्डाली तथा उक्की इन सात प्राकृतों का प्रयोग मिलता है।

संस्कृत साहित्य में यही एक ऐसा नाटक है जिसे सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सार्वभोम कहा जा सकता है।

कालिदास

कविकुलगुरु कालिदास की सात कृतियों में से तीन नाटक है। वे एक सफल नाटककार ह। उनके कवित्व के भार से नाटकीय कथावस्तु कहीं भो आक्रान्त नहीं हुई है। उनके नाटकों में गत्यात्मकता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। कालिदास का काल, जन्म स्थान सभो विवादास्पद है।

अधिकांश भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान् इसी मत के समर्थक है कि कालिदास ई.पू. प्रथम शताब्दी में मालव नरेश शकारि विक्रमादित्व्य की राजसभा के सदस्य थे। इनके तीन नाटक है–

(1) मालविकाग्निमित्रम् :– इस नाटक में शुंगवंशीय नृप अग्निमित्र तथा रानी की परिचारिका मालविका की प्रणय कथा निबद्ध है। कथानक ऐतिहासिक है।

(2) विक्रमोर्वशीयम् :– यह पौराणिक नाटक है। इसका विषय पुरूरवा एवं उर्वशी का विख्यात प्रेमाख्यान है। पुरूरवा केशी नामक दैत्य से उर्वशी की रक्षा करता है इसमें परस्पर प्रेमोद्भव हो जाता है मध्यान्तर में वियोग एवं अन्ततः मिलन के साथ नाटक समाप्त होता है।

(3) अभिज्ञानशाकुन्तलम् :– ''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'' यह नाटक संस्कृत साहित्य में नहीं अपितु विश्व साहित्य में भो अद्वितीय है। 1789 में ही सर विलियम जोन्स ने इसका आंग्ल भाषा में अनुवाद कर विश्व को इसके सौन्दर्य से परिचित कराया था। इस नाटक में 7 अंक है। जिसमें इक्ष्वाकु वंशीय राजा दुष्यन्त एवं महर्षि कण्व पालिता दुहिता शकन्तला की प्रणय कथा वर्णित है। शकुन्तला का उपाख्यान महाभारत से लिया गया है। जिसमें कवि ने अनेक परिवर्तन कर सरस एवं हृदयग्राह्य बना दिया है। कण्व)षि की तीर्थयात्रा, अंगूठी की घटना, दुर्वासा शाप इत्यादि घटनाओं से नाटक में कुतूहल आद्योपान्त बना हुआ है। नाटक का अंगीरस श्रृंगार ही है।

कालिदास के रूपकों के कथानकों की घटनायें परस्पर सम्बद्ध तथा सोद्देश्य भो है। प्रत्येक घटना का कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य है। कथानक के विकास के लिए संक्षिप्त काव्यात्मक वर्जन भो दिये है। वे कहीं भो वैरस्य की स्थिति उत्पन्ना नहीं करते। कालिदास के तीनों रूपक श्रृंगार प्रधान है। जिनमें संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों रूप मिलते है।

इनके काव्यों में तत्कालीन युग चेतना मूर्त रूप में प्राप्त होती है। मनोरंजन के साथ उपदेश का मंजुल समन्वय उनके नाटकों के औदात्य के निदर्शन है। कालिदास की शैली वैदर्भारिति वाली है ''वैदर्भा रीति सन्दभ कालीदासो विशिष्यते'' उनकी सुन्दर उपमा के लिए कहा है।

''उपमा कालिदासस्य'' इसी एक ऐसी ही श्रेष्ठ उपमा के लिए उन्हें ''दीपशिखा कालिदास'' भो कहा जाता है।

प्रकृति चित्रण उनके नाटकों में अद्वितीय है अभिज्ञानशाकुन्तलम् एवं मेघदूतम् कवि के प्रकृति प्रेम के अनुपम उदाहरण है। सर्वत्र प्रकृति का मानवीकरण देखा जा सकता है।

रंगमंच की दृष्टि से भो कालिदास के ये नाटक श्रेष्ठ बन पड़े हैं । कथावस्तु की गत्यात्मकता न तो अतिशय प्रकृति वर्णन द्वारा और न ही अनावश्यक कृत्रिम पाण्डित्य प्रदर्शन द्वारा अवरूद्ध हुई है। सामाजिक की उत्सुकता नाटक में आद्योपान्त बनी ही रहती है। कवि उसे उभारने के लिए समयानुकूल नई वस्तु योजना करता है। संवाद छोटे व प्रसंगानुकूल है।

इस भाँति कालिदास के ये रूपक भावप्रधान होने के कारण एक आदर्शवादी वातावरण के सृजक है। फिर भो यथार्थवाद से अछूते नहीं है। नाट्यकला की दृष्टि से ये रूपक सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं ।

भवभूति

भवभ्ति मूलतः कवि है। भावपक्ष की अपूर्व तरलता के कारण इन्हें कालिदास के समकक्ष रखा जा सकता है। भोलाशंकर व्यास इन्हें विशुद्ध नाटककार नहीं मानते इनके नाटकों को वे गीतिनाट्य के अन्तर्गत रखते है

भवभ्ति के जीवनवृत्त, काल इत्यादि के विषय में नाटक को प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भवभ्ति काश्यप गोत्र के तैत्तिरीय शाखाध्यायी ब्राह्मणों के परिवार में उत्पन्न हुए थे इन्हें 'श्रीकण्ठ' की उपाधि प्राप्त थी तथा इनका समय 750 ई. के लगभग माना जाता है।

भवभ्ति के तीन नाटक प्राप्त है– (1) मालती माधव, (2) महावीरचरितम् (3) उत्तररामचरितम्।

मालतीमाधवम् एक प्रकरण है शेष दो राम कथा पर आधारित नाटक है। इनमें से भो भवभ्ति की कीर्ति पताका को दिगादिगन्त फहराने का श्रेय उत्तरामचरितम् को प्राप्त है।

मालतीमाधवम् –यह दस अंको का प्रकरण है विदभराज मंत्री के पुत्र माधव एवं पद्मावत नरेश पुत्री मालती के प्रणय कथा तथा अनेको विघ्नोपरान्त दोनो के विवाह का इस प्रकरण में वर्णन है। शृंगार रस की प्रधानता है।

महावीरचरतिम् – यह सात अंको का नाटक है। जिसमें रामायण के बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथा का प्रदर्शन किया गया है। वीर रस प्रधान इस नाटक में राम का चरित्र लोकोत्तर शक्ति सम्पन्न भगवान् के रूप में न होकर वीरता से सम्पन्न आदर्श पुरूष के रूप में हुआ है इसीलिए इसका नाम महावीरचरितम् है।

उत्तररामचरितम् – सात अंको का यह नाटक भवभ्ति की सर्वोत्तम कृति है। इसमें कवि के कवित्व व नाट्यकौशल का अद्भत सामंजस्य है। करूणरस प्रधान इस नाटक की कथावस्तु राम के राज्यभिषेक के उपरान्त सीता निर्वासन से प्रारम्भ होकर अश्वबोध यज्ञ के समय सीता–राम के पुनर्मिलन के साथ समाप्त होती है। नाटक में करूण रस की प्रधानता है। करूणरस की वर्णन के कारण भवभ्ति कालिदास से श्रेष्ठ माने गए है ''उत्तरेरामचरिते भवभ्तिर्विशिष्यते''। इसमें भवभ्ति की तीन महत्त्वपूर्ण कल्पनाओं से यह नाटक अतिविशिष्ट है चित्रदर्शन, छायाङ्क, गभनाटक।

'एको रसः करूण एव' की मान्यता वाले भवभ्ति ने संस्कृत नाट्य साहित्य की प्रचलित सरणि के विपरीत करूण रस को नाटक का अङ्गीरस करूण को बनाकर एक अभिनव मार्ग का निर्माण किया।

संयोग, विप्रलम्भ शृंगार तथा करूण के वर्णन में तो वे निपुण है ही साथ ही वीर, रौद्र तथा वीभत्स को भो वे कुशलता से चित्रित करते है। 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' की उपाधि प्राप्त उनके व्यक्तित्व में वैदिग्ध्य एवं पाण्डित्य का मणिकांचन संयोग प्राप्त होता है।

भवभ्ति प्रकृति के कोमल तथा रौद्र दोनो ही प्रकार के रूपों के वर्णन में सिहस्त है।

भवभ्ति के वर्णनों में गौड़ी तथा वैदर्भी का मञ्जुल समन्वय प्राप्त होता है। शिखरिणी भवभ्ति का
सर्वाधिक प्रिय छन्द है।

भट्टनारायण

भट्टनारायण की नाट्यकृति वेणीसंहार में नाट्यशास्त्र की नियमावली का पूर्ण परिपालन किया गया है। नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में पदे–पदे वेणीसंहार के उद्धरण दिए है। अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं एवं संधियों का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अन्तः तथा बाह्य साक्ष्य के आधार पर नाटककार भट्टनारायण का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना गया है। 'क्षितीशवंशावलीचरितम्' के अनुसार ये कान्यकुब्ज निवासी शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्ना सारस्वत ब्राह्मण थे।

''वेण्याः संहारः'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार इस नाटक में द्रौपदी के वेणीसंहार की कथा है।

छः अंकों में निबद्ध इस नाटक की कथा महाभारत की 'भोम प्रतिज्ञा' नामक आख्यान से ली गई है। जिसमें नाटकीय सौंदर्य की दृष्टि से कवि द्वारा अनेक परिवर्तन किए गए है जिससे नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण नाटक बन गया है।

राजसभा में दुःशासन द्वारा अपमानित द्रौपदी ने यह प्रतिज्ञा की थी वह तब तक अपनी वेणी खुली रखेगी जब तक अपमान का बदला न ल लिया जायेगा।

नाटक के प्रारम्भ में पता चलता है कि वनवास की शर्तों को पूरी कर लौटे पाण्डवों की ओर से पाँच गाँवों की संधि प्रस्ताव लेकर कृष्ण दुर्योधन हस्तिनापुर गए है इससे भोम व द्रौपदी क्रोधित होते हैं, यही भोम प्रतिज्ञा करते है कि वे दुर्योधन की जंघा को गदा से तोड़ेगें व उनके रक्तरंजित हाथों से द्रौपदी की वेणी को बांधेगे। श्रीकृष्ण असफल प्रयत्न लौटते है इससे रूष्ट होकर युधिष्ठिर युद्ध की घोषणा कर देते है। अन्त में दुर्योधन व भोम का गदा युद्ध होता है वहाँ वे दुर्योधन की जघा को तोड़कर द्रौपदी की वेणी संवारते है व द्रौपदी प्रसन्ना हो वेणी बांधती है।

भारतीय नाट्यशास्त्र इसका नायक युधिष्ठर को मानता है जबकि पाश्चात्य नाट्यशास्त्री इसे दुःखान्त नाटक मानकर इसका नायक दुर्योधन को बताते है।

नाटक का अंगीरस वीर है जबकि इसमें शृंगार, करूण व वीररस की अभिव्यंजना प्राप्त हुई है

नाटकीय संविधान व रंगमंच की दृष्टि से नाटक में गत्यात्मकता का अभाव है। नाट्य शास्त्रीय नियमों का पूर्ण परिपालन, लम्बे–लम्बे कथा प्रसंग, युद्धों का अनावश्यक वर्जन रसबोध में बाधक है। कथावस्तु की नाटकीय गत्यात्मकता के शिथिल होने पर भो इसका चरित्र चित्रण सुन्दर है।

भट्टनारायण की शैली आलंकारिक है। समासान्त पदों का चयन, गम्भोर ध्वनि वाले शब्दों का निर्वाह कर वे 'ओज' गुण की व्यंजन करते है। किन्तु इस तरह की उदात्त गौड़ी शैली नाटक के लिए अनुपयुक्त होती है।

वेणीसंहार नाटक में भरत मुनि के 'दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्' अनुसार दृश्य व श्रव्य दोनों के ही गुण देखे जा सकते है। यद्यपि दृश्य काव्य की कसौटी पर यह उतना खरा नहीं है। किन्तु काव्य की दृष्टि से यह नाटक सुन्दर बन पड़ा है।

नाट्यकार हर्षवर्धन

नाट्यकार हर्षवर्धन का व्यक्तित्व इतिहास के पृष्ठों में सुस्पष्ट है। बाणभट्ट के 'हर्षचरितम्' तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण में हर्षवर्धन के व्यक्तित्व तथा कृतित्व कवि व राजा हर्षवर्धन का राजकाल 606 ई. से 648 ई. तक सर्वमान्य है।

हर्षवर्धन की तीन रूपक कृतियाँ प्रसिद्ध है– प्रियदर्शिका तथा रत्नावली, ये दो नाटिकाएँ और नागानन्द नाटक।

प्रियदर्शिका – यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें वत्सराज उदयन तथा आरण्यिका (प्रियदर्शिका) की प्रणयकथा निबद्ध है।

रत्नावली – यह भो चार अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन तथा सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय तथा विवाह की कथा है। इस नाटिका में नाट्य के नियमों का पालन पूरी तरह से किया गया है। दशरूपक तथा साहित्यदर्पण में रत्नावली को ही आधार बनाकर नाटकीय वस्तु के तत्तत विभागों की समीक्षा की गई है। अतः इस कृति का शास्त्रीय महत्त्व है।

नागानन्द – इस नाटक का कथानक बौद्ध जातको से लिया गया है। नायक जीमूतवाहन है जो गरूड़ से सर्पों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि भो दे देता है। उसे अपना जीवन प्रिय नहीं है उसे प्रिय है दूसरों का हित चिन्तन, तथा विश्व का मंगल।

हर्ष की काव्यप्रतिभा निःसंदेह प्रथम कोटि की है। इनकी काव्य शैली सरल, सुबोध तथा वैदर्भी–परिष्कृत है। वर्णन में स्वभाविक और विशदता का संगम है। यद्यपि यहाँ उत्प्रेक्षा बाहुल्य है फिर भो सर्वत्र प्रसाद गुण व्याप्त है।

संस्कृत साहित्य को हर्ष ने एक नई परम्परा दी है वह है नाटिकाओ ंकी परम्परा। रंगमंच की दृष्टि से हर्ष की नाटिकाएँ कथानक की दृष्टि से संक्षिप्त होने के कारण अभिनेय है। मञ्चीय व्यवस्था में भो कोई जटिल संविधान नहीं दिखाई देता है। हर्ष के संवाद छोटे, मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक है। जिनसे अभिनय में सहायता मिलती है।

केवल नाटकीय परम्परा के लिए ही नहीं अपितु नाटकीय गुणो की दृष्टि से भो हर्ष की रचनाएँ संस्कृत साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखती है।

11.6 पारिभाषिक शब्दावली

रूप – रूप शब्द मूलतः नेत्रों के विषय का द्योतन करता है, इसीलिए दृश्यकाव्य के लिए प्रयुक्त जातिवाचक नाम रूप या रूपक है।

रूपकं तत्समारोपात् –नटे रामाद्यावस्थारोपेण वर्तमानत्वाद्रूपकं मुख चन्द्रादिवत् इसी अभेदारोप के कारण ही अनुकार्य तथा नट में तादात्म्य प्रतिपत्ति होती है। इसी कारण नाट्य को रूपक नाम से अभिहित किया जाता है।

पाठ्यं – पाठ्यं नाटकप्रकरणनाटिका समवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्क प्रहसन भाण वीथीसदृक़ादि इसमें इन्होंने 'सट्टक' एवं नाटिका को भी जोड़ते हुए 12 भेद माने है।

नाटक– नाटक की कथावस्तु प्रख्यात (ऐतिहासिक या पौराणिक) होनी चाहिए। नायक धीरोदात्त होना चाहिए। नाटक में संध्यङ्गो सहित पाँचों संधियों का विधान होता है। तथा अंकों की संख्या पाँच से 10 तक होती है। चारो वृत्तियाँ (कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती एवं भारती) होती है। मुख्य रस वीर या शृंगार तथा अन्य सभी रस अङ्गी होते हैं।

प्रकरण – प्रकरण की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। प्रकरण का नायक ब्राह्मण, मंत्री या वैश्य में से कोई भी हो सकता है। नायिका कुल स्त्री या गणिका कोई भी हो सकती है। 5 से 10 तक अंक हो सकते है।

डिम – इसकी कथावस्तु इतिहास–प्रसिद्ध होती है। इसमें कैशिकी के अतिरिक्त शेष सभी वृत्तियाँ होती है। इसके नेता उद्धत स्वभाव वाले देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भूतप्रेत पिशाच आदि होते हैं ।

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. लघूत्तरात्मक

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त संक्षेप में दीजिए–

1. रूपक की परिभाषा दीजिए।
2. रूपक के दस भेदों का नामोल्लेख कीजिए।
3. रूपक के दस भेदों का विभाजक तत्त्व बताइये।
4. भाण के दो प्रमुख तत्त्व बताइसे।
5. संस्कृत रूपकों की दो विशेषताएँ बताइये।
6. कालिदास की नाट्य कृतियों का उल्लेख कीजिये।
7. संस्कृत के प्रमुख नाट्यकारों का नामोल्लेख कोजिये।
8. भवभूति का समय बताइये।
9. हर्ष की नाटिकाओं का नामोल्लेख कीजिये।
10. नाटिका को परिभाषित कीजिये।

विस्तृत प्रश्न

1. रूपक के दस प्रकारों पर एक लेख लिखिए।
2. संस्कृत नाट्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. 'काव्येषु नाटकं रम्यं' पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिये।
4. संस्कृत के प्रमुख नाट्यकारों की रचनाओं पर सारगर्भित लेख लिखिये।
5. 'रूपक–प्रकार' पर विभिन्न नाट्यशास्त्रियों के मतों का विश्लेषण करें।

लघु प्रश्नों के उत्तर

1. 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपकं दृश्यतयोच्यते'
2. नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, वीथी, व्यायोग, समवकार, अंक ईहामृग, डिम।
3. वस्तु नेता रसस्तेषां भदेकः।
4. एकांकी, एक ही पात्र, आकाश भाषित का प्रयोग
5. संस्कृत देखें 11.4
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्।
7. भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, भट्टनारायण, भवभूति।
8. देखें 11.5
9. प्रियदर्शिका, रत्नावली।
10. देखें 11.3

अभ्यास के उत्तर

1. देखें 11.3
2. देखें 11.4
3. देखें 11.4
4. देखें 11.5
5. देखें 11.3

11.8 सारांश

इस इकाई में हमने नाटक के दस प्रमुख भेदों का ज्ञान प्राप्त किया । संस्कृत रूपकों की प्रमुख विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त किया । काव्य के प्रमुख भेदों को जाना । संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाट्यकर्ों के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं संस्कृत वाङ्मय में उनके योगदान को जाना ।

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी दशरूपकम्,डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.
2. नाट्यशास्त्र पं. बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्यायचौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
3. नाट्यशास्त्र,पं. केदारनाथ,भारतीय विद्याभवन, नई दिल्ली, 2002.
4. महाकवि भास एक अध्ययन,पं. बलदेव उपाध्याय,चौखम्भा विद्यामाला, वाराणसी,1964.
5. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
6. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953.